श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुजीका जीवन वृत्त

अध्या० केशवराम का० शास्त्री, 'विद्यावाचस्पति'

देशकी धार्मिक-सामाजिक परिस्थिति

श्री शंकराचार्यजीके समयमें बौद्धसंप्रदायके अनुयायी लोग प्रायः करके सनातन वैदिक परंपराके अन्तर्गत आ चुके थे। बौद्ध संप्रदायका वर्चस् करीष नष्ट हो चुका था। जैन संप्रदाय भी गुजरात मारवाड़ एवं दक्षिणके भूभागोंमें सीमित था। श्री शंकराचार्यजीके प्रस्थापित किये हुए ज्ञानमार्गका और पाञ्चरात्र भागवत संप्रदायके भक्तिमार्गके प्राचीन प्रवाहका अनुसरण काफी स्वरूपमें होता चला था। शाक्त संप्रदाय भी अन्यान्य शक्तिपीठोंमें चालू रहा था। भागवत संप्रदायकी शाखाओंका विकास दक्षिणमें ठीक-ठीक होता रहा था, उत्तरपूर्व-पश्चिममें भी उसकी प्रणाली अविरत चालू थी। सूर्यके देवालयोंका भी सर्जन होता ही रहा था। ईसाकी ग्यारहवीं शतीकी दूसरी पचीसीके आरम्भमें ही जब कि महमूद गज़नवी सौराष्ट्रमें सोमनाथ तक पहुँचा तबसे मुस्लिम विदेशियोंकी भारतवर्षपर शासन करनेकी भूख प्रदीप्त होने लगी। इस पूर्व सिन्धमें अरबोंने अपनी सत्ता जमानेका कुछ प्रयत्न आठवीं शतीसे ही शुरू कर दिया था, एवं वहाँ कुछ सफलता भी मिली थी, किन्तु वह वहाँ ही सीमित थी। गज़नवीके अफगान पठानोंके आक्रमणोंकी परंपरा चली, और हम देखते हैं कि गोरीवंशके सुल्तानोंने दिल्हीपत्ति पृथ्वीराज चौहाणको परास्त करके भारतवर्षमें साम्राज्यकी स्थापना करनेका तेरहवीं शतीमें आरम्भ किया। अब आइस्तां-आइस्तां मुस्लिम सत्त्वका प्राबल्य बढ़ता रहा, वह न केवल सत्ताप्राप्तिमें सीमित रहा, बलात्कारसे धर्मपरिवर्तनमें भी आगे बढ़ा। आपस-आपसके विद्वेषमें राजपूत सत्ताएँ भी उत्तरोत्तर निर्बल बनती जा रही और अनेक स्थानोंमें देवालयोंके स्थानोंमें मस्जिदें बनती जा रही। भारतीय-प्रजाकी विदेशीय पराधीनता रूढ़मूल होने लगी। उस समय, खास करके दक्षिणके देशोंमें विष्णुस्वामी, श्रीरामानुजाचार्यजी, श्रीनिम्बार्क एवं श्रीमध्वाचार्यजीने अपनी-अपनी प्रणालियोंका विकास करके लोगोंके धर्मका एवं समाजका रक्षण करनेका प्रयत्न किया। विद्यापति, कबीर, नरसिंह मेहता जैसे सन्त और भक्तोंने अपने-अपने प्रदेशमें लोगोंके आत्मविश्वासको दृढ़ करनेका प्रबल प्रयत्न किया। उनसे पूर्व ही विदर्भमें महानुभाव संप्रदायके भक्तोंने कृष्णभक्तिका प्रवाह अच्छी तरहसे बढ़ाया था और महाराष्ट्रमें ज्ञानीभक्त ज्ञानेश्वर-ज्ञानदेव और नामदेवने श्रीविठोबा श्रीकृष्णकी भक्तिको अच्छा बना दिया था। राजकीय दृष्टिमें बिचारी बनती जाती प्रजाको इससे अपनी भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्मप्रणाली आदिका रक्षण करनेका बल मिला—हम जब ईसाको पन्दरहवीं शतीमें आते हैं तब ई० सं० १४१२ में दिल्हीके तख्त पर सैयद वंशका वर्चस् और ई० सं० १४५० में लोदीवंशका वर्चस् देखते हैं। दक्षिणमें ई० सं० १३४७ में हसन गंगू ब्राह्मणी नामक सूबेने गुलबर्गमें मुस्लिम राज्यकी स्थापना कर दी थी, किन्तु बुक्क और हरिहर नामक दो कर्णाटकी राजपूत भाइयोंने विजयनगरकी नई वसाहत करके एक प्रबल हिन्दू राज्यकी वहाँ जड़ डाल दी, इस कारण दक्षिणमें मुस्लिम वर्चस् कामयाब इतना नहीं हुआ, जितना उत्तरमें हुआ। मालवेमें ई० सं० १४०१ में मुस्लिम स्वतन्त्र राज्य अस्तित्वमें आया, तो अयोध्याके निकट गङ्गाके तट प्रदेशमें जौनपुरमें भी ऐसा मुस्लिम एक स्वतन्त्र राज्य अस्तित्वमें आ गया। गुजरातमें ई० सं० १३०० करीब दिल्हीकी सत्ता आ चुकी थी और ई० सं० १३५९ से वहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुस्लिम स्वतन्त्र सल्तनतकी जड़ मजबूत हो गई थी। श्रीवल्लभाचार्यजीके शब्दोंमें कहा जाय तो 'म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु'—ऐसी परिस्थितिमें लोगोंकी क्या परिस्थिति होगी उसका पता चलता है। अस्वतन्त्र होती जाती प्रजाको आत्मविश्वास देनेवाला कोई भी प्रयत्न हो तो वह उस समय केवल भक्तिका ही था। श्रीवल्लभाचार्यजी एवं उनके उत्तर समकालीन श्रीगौरांग चैतन्य महाप्रभुने उत्तर और पूर्वमें भक्तिमार्गका प्रबल प्रसार सोलहवीं शतीमें किया और भारतीय प्रजामें आत्मविश्वाससे जीनेका बल दिया।

श्रीवल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव

ईसाकी प्रथम शतीसे भारतवर्षके प्रदेशोंमें आन्ध्र साम्राज्यकी जहोजलाली थी और वहां भारतीय संस्कृति एवं सभ्यताका विशिष्ट प्रवाह बढ़ता ही रहा था और उसका असर नीचेके अन्य द्रविड़ प्रदेशोंमें भी अच्छी तरहसे चालू था। विद्वत्ताके विषयमें समग्र द्रविड़ प्रदेशोंकी करीब अग्रिमता ही रही थी। भारतवर्षने जो अनेक महान् आचार्योंका प्रदान किया, प्रायः वे सभी द्रविड़ भूभागके ही थे। महान् श्रीशंकराचार्य, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बार्क, श्रीमध्व, और वेदभाष्यकार सायणाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्य एवं श्रीविद्यारण्य स्वामी आदि वहाँके ही रत्न थे।

द्रविड़देशान्तर्गत आन्ध्रप्रदेशके कांकर तहसीलमें कांकर पांढू गाँव भी परम्परासे श्रीविष्णुस्वामीके संप्रदायका स्थान था और वहाँ श्रीवल्लभाचार्यजीके पूर्वजोंका निवास था। इस संप्रदायके आरम्भकालमें इष्ट श्रीनृसिंह थे, पीछेसे श्रीगोपाल कृष्णकी भक्तिकी प्रचुरता होती चली थी। श्रीवल्लभाचार्यजीके पूर्वजोंमें यज्ञयागादिक वैदिक धर्मके आदरवाली भक्तिका प्राचुर्य था। इनके पूर्वजोंमें श्रीयज्ञनारायण भट्टसे कुछ माहिती मिलती है। वे आन्ध्र तैलंग ब्राह्मण थे। उनका वेद कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता), शाखा तैत्तिरीय, गोत्र भरद्वाज, सूत्र आपस्तम्ब, देवी रेणुका, कुल वेल्लनाडु, और आख्या खम्भपट्टीवारू थी। उनके घरमें वैदिक परिपाटीका अग्निहोत्र चालू था। सोमयाग जैसे यज्ञ भी करते रहते थे। यज्ञनारायण भट्टजीने ३२, इनके पुत्र गङ्गाधर भट्टने २७, इनके गणपति भट्टने ३०, इनके वल्लभ भट्टने ५, और इनके पुत्र लक्ष्मण भट्टने ५, इस प्रकार पाँच पूर्वजोंने मिलकर १०० सोमयाग किये थे, जिसका ही फल देवांश श्रीवल्लभाचार्यजी माने गये हैं, लक्ष्मण भट्टजीके हृदयमें किस प्रकारकी श्रद्धा होगी वह तो कैसे कहा जाय, किन्तु अन्तिम यज्ञ पूर्ण करके प्रयागमें त्रिवेणीस्नान करनेकी और प्रयाग एवं काशीमें ब्रह्मभोजन करानेकी उनकी महेच्छा थी। लक्ष्मण भट्टजीका लग्न उस समयके सुप्रसिद्ध विजयनगर साम्राज्यके पुरोहितकी बहिन एल्लम्मागारूके साथ हुआ था। यज्ञपूर्णाहुतिके बाद प्रयाग-काशीका धर्मकार्य पूर्ण करनेके बाद अनुकूलता हो तो काशीमें ही शेष जीवन बितानेकी भावना थी। उस समय स्वजातीय अनेक तैलङ्ग ब्राह्मणोंका निवास काशीमें था भी, अनेक संप्रदायोंके अनुयायियोंकी भी वहाँ अच्छी तादात थी, विष्णुस्वामी-संप्रदायके अनुयायी भी वहाँ थे, इस कारणसे भी काशी निवास करनेमें बल मिला था। ई० सं० १४७० के वर्षमें लक्ष्मण भट्टजी अपने वतन कांकरपाढूमें अपने बड़े लड़केको अपने कुलके श्रीरामचंद्रजीके मन्दिरकी सेवाका कार्य सौंपकर काशी बाजू सकुटुम्ब चल पड़े, अन्य रिश्तेदार लोग कांकरपाढूमें थे, इस कारण लड़केको एकाकीपन लगे ऐसा नहीं था। घरसे निकलकर (वि० सं० १५२७) के द्वितीय आषाढ़की अमावास्या एवं गुरुवारके दिन भट्टजी प्रयागमें आ पहुँचे और सूर्यग्रहणके योग पर त्रिवेणीस्नान करनेका लाभ उठाया; करजकी परवाह किये बिना ब्रह्मभोजन भी अच्छी तरहसे करवाया, काशीमें आनेके बाद वहाँ भी ब्रह्मभोजन करवाया और वहाँ ही ठहर गये, काशीमें दक्षिणके एक विद्वान् माधवेन्द्र यतिकर थे। उनके संपर्कमें लक्ष्मण भट्टजी आये। माधवेन्द्रयति सुप्रसिद्ध श्रीगौरांग चैतन्य महाप्रभुके बड़े भाई नित्यानन्दजीके गुरुभाई थे। काशीमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतिजीकी पाठशाला थी और कहा जाता है कि लक्ष्मणभट्टजीने वहाँ ज्योतिष शास्त्रका अभ्यास किया था। काशीमें स्वेष्ट अनुकूल वातावरणमें लक्ष्मणभट्टजी यागादिकके उत्तर कार्योंसे निवृत्त होकर आनन्दसे स्वाध्याय और श्रीगोपालकृष्णकी विष्णुस्वामी संप्रदायकी प्रणालीसे भक्ति करनेमें अपने दिन व्यतीत कर रहे थे, इतनेमें अचानक एक आपत्ति आई।

काशी जौनपुरके मुस्लिम राज्यकी सत्तामें था। दिल्लीके बहलोल लोदी (ई० सं० १४५०-८९) और जौनपुरके सुल्तान हुसेनके बीच संघर्ष चालू था। बेशक, आरम्भमें उसका असर पूर्वमें काशी तक नहीं पहुँचा था, और काशीवासी लोग निश्चिन्त रहते थे। आहिस्ता आहिस्ता जौनपुरका प्रदेश दबाते-दबाते दिल्हीके सैन्य पूर्वमें आगे बढ़ते जाते थे। ऐसा एक हल्ला काशीके प्रान्तप्रदेशमें होनेका भय खड़ा हुआ और काशीके लोगोंमें नास भाग शुरू हो गई। एल्लमागारूजी सगर्भा थी और काशी छोड़ना अनिवार्य बन गया था। लक्ष्मण भट्ट अपने दूसरे रिश्तेदारोंके साथ, निकल पड़े, प्रवास लम्बा था। कितने दिनोंके बाद वे अपने वतनके सीमाप्रान्त आ पहुँचे। जब महानदीके तीर प्रान्तके चम्पारण्य नामक अरण्यमें आये तब ई० सं० १४७२ (वि० सं० १५२९)के व्रज वैशाख वदि ११ एवं शनिवारके दिन प्रवासके असामान्य कष्टके कारण श्री एल्लमागारूजीको सातवें मासमें कुछ अपक्वसे बालकका एक शमीवृक्षके नीचे प्रादुर्भाव हो गया, साथके प्रायः सभी लोग कांकरपांढू पहुँच गये थे। लक्ष्मणभट्टजी और एल्लम्मागारूजी अपनी दो बच्चियोंके साथ थे। रात्रिका आरम्भ हो गया था और ६ घड़ी और ४४ पल पर यह प्रसूतिका प्रसंग बन गया। सातवें मासमें जात बालकको मृतवत् समझकर वस्त्रमें लपेट लिया और शमीवृक्षके कोटरमें रखकर, अन्य प्राणियोंसे बचानेके लिए वृक्षके चारों ओर अग्निका वर्तुल कर दिया। रात्रि वहाँ ही पूर्ण की; माताजीके उस समय कुछ स्वस्थता प्राप्त हुई तब बोल उठीं। मेरा बच्चा कहाँ है? बच्चा शमीवृक्षके कोटरमें बताया गया। रात्रिभरके जलते अग्निके कारण बच्चेके देहमें शक्ति आ गई थी। वह रोने लगा, माताने अग्निको हटाकर बच्चेको गोदमें तो लिया। मान लिया गया कि भौतिक अग्निने ही अपने आधिदैविक स्वरूपको धारण करके जगत् के समक्ष दर्शन दिया। उस समय वहाँ जो कोई भी हरिजन थे उन सबोंको आनन्द हो गया। स्वस्थताके बाद आहिस्ता-आहिस्ता शेष लोग नज़दीकके चौड़ा गाँवमें आ पहुँचे—वहाँका रईस लक्ष्मण भट्टजीका परिचित था; उनको वहाँ अच्छा आश्रय मिल गया। छट्ठीके दिन काशीसे माधवेन्द्र यति और मुकुन्ददास नामक एक विरक्त वैष्णव उस चौड़ामें ही आ पहुँचे; भट्टजीके वहाँ पुत्रका जन्म सुनकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। करीब डेढ़ मासका समय चौड़ामें ही निकला, जातकर्मादि सभी संस्कार करनेके बाद भट्टजी अब कांकरपाढू अपने घर पर आ गये।

काशीसे अशान्तिके समाचार आते रहते थे। ई० सं० १८७६के शीतकालमें दिल्हीके सैन्योंने हुसेनका पराजय पूरा कर लिया और बहलोल लोदी एवं हुसेनके बीच तीन सालोंका तह हुआ। अब काशीमें शान्ति हुई और वह समाचार कांकरपाढूमें आनेके बाद आये हुए लोगोंने काशी वापस लौटनेका उद्यम किया। इन तीन वर्षोंके बीच भट्टजीके वहाँ एक ओर पुत्रका जन्म हुआ था। भट्टजीका प्रथम पुत्र रामकृष्ण कांकरपाढूमें ही था, दूसरा अग्निरक्षित पुत्रका नाम 'वल्लभ' रखा गया था और तीसरेका नाम रामचन्द्र दिया था। पिताजीकी भावना थी कि वल्लभको यथा समय विद्याभ्यासके लिए काशीमें ही व्यवस्था करनी चाहिए। माधवेन्द्र यतिजी की पाठशाला काशीमें ही थी, अतः सुविधा थी ही। लक्ष्मणभट्टजी अपने छोटे कुटुम्बके साथ काशी जा पहुँचे। अब जब श्रीवल्लभको पाँचवें वर्षका आरम्भ गया तब (वि० सं० १५३३ ई० सं० १४७६) आषाढ़ सुदि २ और रविवारके रथयात्राके दिन पिताजीने खुदने ही श्रीवल्लभको अक्षरारम्भ करवाया और पाँचवें वर्षके अन्त भागमें (वि० सं० १५३४ ई० सं० १४७७) चैत सुदि ९ और रविवारको यज्ञोपवीत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कार बड़ी धामधूमसे किया गया। इसके बाद तुरन्त ही अपने स्नेही यतिराज माधवेन्द्रयति की पाठशालामें श्रीवल्लभके विद्याभ्यासका प्रबन्ध कर लिया गया। करीब डेढ़ वर्ष अध्ययन हुआ इतनेमें माधवेन्द्र यतिका ब्रजमें जानेका हुआ और इनके शिष्य माधवानन्दजीके हाथमें अध्यापनकार्य चालू रहा। जब सातवां जन्मदिन आया उस समय संभवतः पिताजी द्वारा विष्णुस्वामी-संप्रदायकी दीक्षा बाल श्रीवल्लभ को हुई। पीछेसे यह बात विस्मृत हो गई और उस दिनको ही संप्रदायमें जन्ममाङ्गल्यदिन माना गया। संप्रदायमें यह दिन वि० सं० १५३५ (ई० सं० १४७८)के व्रज वैशाख वदी १०मी उपरान्त ११ और रविवारका माना है, और 'एकादसी दूसरो याम'--जो स्पष्ट रूपमें जन्मका नहीं, दीक्षामांगल्यका ही समय है। सगुणदासजीके निम्न पदमें यह बात ही दीख पड़ती है--

"कांकरवारे तैलंग-तिलक-द्विज वंदों श्रीमदलक्ष्मणनंद।
श्रीब्रजराजशिरोमनि सुंदर भूतल प्रगटे बल्लभचंद॥
अवगाहत श्रीविष्णुस्वामि पद नवधाभक्तिरत्न-रसकंद।
दर्शन ही ते प्रसन्न होत मन प्रगटे पूरन परमानंद॥
कीरति विरुद कहां लों बरनों गावत लीला श्रुति सुरछंद।
सगुणदास-प्रभु षट्गुणसंपन कलिजन-उद्धरन आनंदकंद॥

दक्षिणके देशोंमें आज पर्यन्त यह रिवाज चालू है कि बालकको विशिष्ट दीक्षा दी जाती है तब उस दिनकी मुहूर्तकुण्डली बनवाकर उस दिनको जन्मदिन जितना गौरव दिया जाता है।

बरोबर इस प्रसंग पर गुरुके शोधमें निकले हुए एक क्षत्रिय भक्तका आगमन हुआ। शरणार्थी यह क्षत्रिय कृष्णदास मेघन श्रीवल्लभाचार्यजीके समग्र जीवनकालमें अहोरात्र परिचर्यामें लगातार चालू रहा था।

विजयनगरमें वास

काशीमें श्रीमाधवानन्दजीके पास श्रीवल्लभका अध्ययन व्यवस्थित चालू था। १६ वर्षमें सामान्य शास्त्रोंका अध्ययन हो गया और अब विशिष्ट शास्त्रोंके अध्ययनकी सुविधा दक्षिणमें सुलभ होनेके कारण मौसालमें जानेकी श्रीवल्लभकी इच्छा जानकर पिताजी सहकुटुम्ब विजयनगरकी ओर निकल पड़े। बीचमें यात्राके स्थानोंमें फिरते-फिरते भट्टजी विजयनगर आ पहुंचे और राज्यके दानाध्यक्ष अपने मामाजीके द्वारा की हुई सुविधाके कारण श्रीवल्लभका शास्त्रों एवं दर्शनोंका अध्ययन सुचारुरूपसे आगे बढ़ता जा रहा। यहाँ अन्यान्य आस्तिक-नास्तिक दर्शनोंके अध्ययनके साथ-साथ पूर्वमीमांसाका अध्ययन विशिष्ट रूपसे हुआ।

विजयनगरमें अच्छी तरहसे सुस्थिर होनेके बाद पिताजीकी इच्छा दक्षिणके तीर्थ स्थानोंके दर्शन की हुई। इस कारण कांकरपाढूसे बड़े पुत्र रामकृष्णको बुलवा लिया और तीनों पुत्रोंको लेकर माता-पिता यात्राके लिए निकले। दोनों पुत्रियोंके लग्न होनेके कारण उस विषयमें निश्चिन्तता थी। यात्रा करते-करते जब यह कुटुम्ब श्रीलक्ष्मण बालाजीके पवित्र धाममें गया (वि० सं० १५४४-ई० सं० १४८७) तब श्री····को शृंगार कराते-कराते लक्ष्मणभट्टजीका देहान्त हो गया। उस समय श्रीवल्लभका वय १६ वर्षोंका और छोटे रामचन्द्रका वय १४ वर्षोंका था। वहाँ ही पिताजीकी अन्त्येष्टि करके यह कुटुम्ब विजयनगर वापस लौट आया, रामकृष्ण कांकरपाढू गया। उनका दिल शुरूसे ही विरक्त होनेके कारण परम्पराके श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा अपने दूसरे कुटुम्बीजनोंको सौंपकर उन्होंने मध्वसंप्रदायकी दीक्षा ली और 'केशवपुरी' नाम धारण करके घरसे निकल गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम लघुयात्रा

श्रीवल्लभ एवं रामचन्द्र विजयनगरमें आकर मौसालमें स्थिर हुए। यहाँ पिताजीके वार्षिक श्राद्धको पूर्णकर पिताजीकी यात्राकी अपूर्ण इच्छा पूर्ण करनेके लिए और माताजीको भी यथापुण्यका लाभ देनेके लिए अल्प समयके लिए सं० १५४५ (ई० स० १४८८)में प्रवासमें आगे बढ़े। प्रथम कांकरपाढ़ू आये और माताजी की शोकमुक्ति करवाई। वहाँसे अब आप, श्रीमाताजी और सेवक कृष्णदास मेघन तीन आगे बढ़कर श्रीपुरुषोत्तम शेष श्रीजगदीशमें पहुंचे। उस समय ओरिस्सामें गजपति पुरुषोत्तम नामक परम धार्मिक राजा था। श्रीजगन्नाथपुरीमें उसके दरबारमें वाद-विवाद चलता था कि—(१) मुख्य शास्त्र क्या, (२) मुख्यदेव कौन, (३) मुख्य मन्त्र क्या, और (४) मुख्य कर्म क्या? श्रीजगदीश मन्दिरके विशाल प्रांगणमें वादविवाद हो रहा था उसी समय अकस्मात् श्रीवल्लभ श्रीजगदीशके दर्शनके लिए आ पहुंचे। यह बाल ब्रह्मचारी श्री····के दर्शनके बाद कुतूहलवशात् उस वादसभामें बैठे। प्रश्न सरल थे, किन्तु वे गम्भीर। श्रीवल्लभको आश्चर्य हुआ कि यहाँ श्रीजगदीशके मन्दिरमें ही बैठकर इस प्रकारकी बालिश चर्चा होती है। इन प्रश्नोंका उत्तर मात्र चतुराईकी अपेक्षा तीर्थगोरकृष्णजीको पूछने लगे कि मैं इस चर्चामें भाग ले सकूँ? गोरने राजाजीसे निवेदन किया। अनुज्ञा मिलनेपर श्रीवल्लभ खड़े हुए और साश्चर्य निवेदन किया कि यहाँ हम सब आस्तिक लोग इकट्ठे हुए हैं। हमारी सबोंकी अपने शास्त्रोंमें श्रद्धा है। वेद-उपनिषद्, गीताजी और ब्रह्मसूत्रों-में हमारी पूरी श्रद्धा है। इन तीन प्रस्थानोंमें हमारी गीताजीकी ओर परम श्रद्धा है। क्या गीताजी पन्द्रहवें अध्यायके अन्त भागमें जो कहती है, क्या हमें वह बाध्य नहीं है? इस बातको हम प्रमाणके रूपमें यदि स्वीकार करते हैं तो अपने आपसे ऊपरके चार प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है; जैसा कि—

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं, एको देवो देवकीपुत्र एव।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

(१) भगववान् देवकीनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा गाई हुई गीता एकमात्र शास्त्र,
(२) वे देवकीनन्दन श्रीकृष्ण एकमात्र देव,
(३) उनके जितने नाम वे एकमात्र मन्त्र, और
(४) उनकी सेवा वह एकमात्र कर्म।

इस निर्णयात्मक कथनसे सभी लोगोंके मनका उत्तमोत्तम समाधान करके श्रीवल्लभ तुरन्त वहाँसे निकल गये, मानव समूहमें सम्मिलित हो गये। इस बालसरस्वतीको यश या विजय या प्रतिष्ठाका कोई खयाल नहीं था, न मानकी कोई भावना भी अब तक खड़ी नहीं हुई थी। वे दूसरे दिन यात्रा में आगे बढ़े। इस प्रवासमें ही वर्धामें उनको एक दूसरे महत्त्वके शिष्य-सेवक आ मिला, जो दामोदरदास हरसानीके नामसे प्रसिद्ध है। [इस ऐतिहासिक प्रसंगका निर्देश जगन्नाथपुरीके इनके गोर गुच्छिकार कृष्णने वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८)में श्रीवल्लभाचार्यजीके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी श्रीजगदीश दर्शनके लिए गये थे तब उनको कहा था, और गोरके चोपड़ेमें इस बातके लिखे हुए निर्देश पर श्रीगोपीनाथजीके हस्ताक्षर भी प्राप्त हुए हैं।]

श्रीवल्लभ इस लघुयात्रामें आगे बढ़ते हुए दूसरे वर्षमें उज्जैन आ पहुंचे और अपने तीर्थगोर नरोत्तम-के चोपड़ेमें सं० १५४६ चैत्र सुदि १के दिन कन्नड़ लिपिमें हस्ताक्षर दिये। वे आज भी सुलभ हैं—'श्रीविष्णु-स्वामिमर्यादानुगामिना वल्लभेन अवन्तिकायां नरोत्तमशर्मा पौरोहित्येन सम्माननीयः सं० १५४६ चैत्र शुद्ध प्रतिपदि।' इस समय श्रीवल्लभका वय १७ का था। इस लघुयात्राको समाप्त कर अल्प समयमें विजयनगर वापस आ पहुंचे और अध्ययन कार्यको फिरसे शुरू कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थलेखनारम्भ

विजयनगरके कुछ लम्बे निवासमें छोटी मोटी वाद सभाओंमें भाग लेनेके प्रसंग आये थे इस कारण स्वसिद्धान्त प्रतिपादनकी शक्ति और प्रतिपक्षियोंके समक्ष अपनी बात सुचारुरूपसे रखनेकी युक्तिमत्ता सिद्ध हो गई थी। पूर्वमीमांसाका बलिष्ठ अभ्यास हुआ ही था, इससे स्वतन्त्र विचार करनेकी भी शक्ति सिद्ध हो चुकी थी। अपने विजयनगरके निवास दरम्यान श्रीवल्लभने अपने प्रवासमें भी रखनेकी सुविधा हो इस कारण रूपरेखात्मक 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' नामक बड़े प्रकरण ग्रन्थकी रचना भी की थी।

इस ग्रन्थसे श्रीवल्लभने विचार विमर्शकी एक नयी ही दिशा खोल दी, आज तक आचार्योंने उपनिषद्, गीता, एवं ब्रह्मसूत्रोंको तीन प्रस्थानोंके रूपमें स्वीकार किया था, श्रीवल्लभने व्यासकी समाधि भाषा—श्रीमद्भागवतको चतुर्थ प्रस्थानका मान दिया, इस पूर्व मध्वसंप्रदायमें भागवतका और आदर था, किन्तु प्रस्थान के रूपमें स्वीकार नहीं किया गया था, इसके आगे यह भी बात श्रीवल्लभने की थी कि इन चारों प्रस्थानोंको अनुकूल रखकर किसीने आज भी कोई विधान किया हो तो भी वह प्रमाण है। प्राचीनतम हो, किन्तु चारों प्रस्थानोंके खिलाफ हो तो वह सर्वथा अप्रमाण—अमान्य है।

'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध'का अध्ययन करनेसे एक बात अत्यन्त स्पष्ट है कि श्रीवल्लभके दिलमें उस समय कोई नया मत प्रस्थापित करनेका खयाल नहीं था, कलियुगमें मात्र कृष्णसेवा ही उद्धार करने वाली है यह बात उन्होंने स्पष्ट रूपमें कही थी, इस निबन्धके प्रथम 'शास्त्रार्थप्रकरण'में वेदान्त सिद्धान्त—'अविकृत परिणाम वाद' किंवा 'अखण्ड ब्रह्मवाद'का स्वरूप स्पष्ट किया था, जिसके पीछे श्री विष्णुस्वामीकी परम्परा होना संभव है। उनको पिताजीकी ओरसे उस परंपराके भागवत मार्गके जो संस्कार मिले थे उनकी प्रतिच्छाया इस निबन्ध ग्रन्थमें मिली थी, श्रीमद्भागवतके अर्थोंका भी उन्होंने विचार किया था। वह इस निबन्धके तीसरे 'भागवतार्थ प्रकरण'में मिलता है, इस निबन्धके प्रथम शास्त्रार्थ प्रकरणकी पुष्पिका इस बातका ही समर्थन करती है, जैसा कि 'श्री कृष्ण वेदव्यास विष्णुस्वामी मतानुवर्ति श्रीवल्लभदीक्षित विरचिते तत्त्वदीपे शास्त्रार्थ प्रकरणं नाम प्रथमं प्रकरणम्।' संभव है इस निबन्धका तीसरा प्रकरण कितनेक समय बाद ही लिखा हो।

प्रथम भारत परिक्रमा—

अपनी २० वर्षोंकी वयमें श्रीवल्लभने विजयानगरमें काफी अध्ययन-परिशीलन और ग्रन्थ लेखन शक्तिकी प्राप्ति कर ली थी। अब देशाटन एवं यात्रा करके अपने ज्ञानको मजबूत करनेकी भावना हुई, इस समय तकमें वर्धाके दामोदर दास हरसानी करके भावुक भक्त सेवक भी सेवामें आ पहुँचे थे। श्री वल्लभ कृष्णदास मेघन और दामोदरदास हरसानी ये तीन अब भारतवर्षके तीर्थोंकी परिक्रमा करनेके लिए निकल पड़े। अब विजयनगरसे निकलकर यात्रा करते करते वे पंढरपुर आये। श्रीवल्लभने भीमरथी नदीके तटपर प्रथम ही श्रीमद्भागवतका पारायण किया। संभव है कि श्रीमद्भागवतकी उनकी प्रथम सूक्ष्म टीकाका आरम्भ भी यहाँसे हुआ हो। इस टीकामें श्रीभागवतके प्रकट शब्दार्थ बतानेका प्रयत्न था। इस प्रवासमें ही १. जैमिनिके पूर्वमीमांसा धर्म सूत्रोंके भाष्यका और बादरायणके उत्तरमीमांसा ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यका भी आरम्भ किया हो। इससे पूर्व 'तत्त्वार्थ दीप निबन्ध'के दूसरे 'सर्व निर्णय' प्रकरणमें पूर्वमीमांसाके मूलतत्त्व देकर वहाँ ही भागवत मार्गकी उपयोगिता बतानेका प्रारंभिक प्रयत्न किया ही था। अब भाष्य द्वारा उस प्रयत्नोंको सनाथ करनेका मनोभाव असंभवित नहीं है।

शुद्धाद्वैत वेदान्त—उनके शब्दमें तो 'ब्रह्मवाद', उसकी वैसी ही स्थिति थी। श्री विष्णु स्वामीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही मत था। किन्तु उनका कोई ग्रन्थ बचा नहीं था, अतः उस सिद्धान्तका सविशेष प्रकाश 'ब्रह्म सूत्रों'के 'अणुभाष्य' में बताना समुचित समझा गया।

इस परिक्रकासे आप सं० १५५४ (ई० सं० १४६७) वैशाख सुदि ३ के दिन श्रीवल्लभ अपने दोनों सेवकोंके साथ विजयनगर आ पहुँचे। संभव है कि इस परिक्रमाके समयमें श्रीवल्लभने श्रीमद्भागवतकी सूक्ष्म टीका, पूर्वमीमांसा भाष्य एवं अणुभाष्य संपन्न करनेकी संभावना है। इन सभी ग्रन्थोंमें और बालबोध, सिद्धान्त मुक्तावलि, भक्ति वर्धिनी जैसे प्रकरण ग्रन्थोंमें कोई नया मत संप्रदाय प्रस्थापित करनेका पता चलता नहीं है।

द्वितीय भारत परिक्रमा :

एक वर्षके लिए विजयनगरमें ठहरकर सं० १५५५ (ई० सं० १४९९) चैत्र सुदि २ रविवारके दिन माताजीकी आज्ञा लेकर अपने उन दोनों सेवकोंके साथ निकल पड़े और वहाँसे यात्रा करते करते पंढरपुर फिरसे आ पहुँचे। वहाँकी यात्रा पूर्ण करके गुजरात सौराष्ट्रके अनेक तीर्थोंमें गये और बहुतसे स्थानोंमें श्रीमद-भागवत पारायणका लोगोंको श्रबण कराया, वहाँसे मालवेमें आकर फिर बुंदेलखण्डमें वेत्रवतीके तीर प्रान्तपर आये हुए ओड़छाके प्रदेशमें आ पहुँचे। उस समय 'ओड़छा' प्रसिद्धिमें आया नहीं था; राजधानी गढकुंडार नामक किलामें थी। उस समय वहाँ मलखान सिंह नामक राजपूत राजा (ई० स० १४६९-१५०२) था और उसके दरबारमें शांकरों एवं वैष्णवोंके बीच वादचर्चा चल रही थी। घटसरस्वती नामक एक शांकर विद्वान् केवला-द्वैत वादका प्रबलतासे समर्थन कर रहा था। उसके सामने वैष्णवोंके लिए टिकना असंभव बन गया था। बरो-बर उसी मौकेपर श्रीवल्लभ वहाँ आ पहुँचे, उनकी ख्याति इस पूर्व भारतके विद्वानोंमें स्थापित हो गई थी। उनका आगमन सुनते ही राजा एवं श्रीवल्लभके सजातीय राजपण्डित विद्या देव और अन्य वैष्णव विद्वानोंको आनन्द हुआ। इस समय श्रीवल्लभका वय २७-२८का था। दोनों मीमांसा एवं भगवच्छास्त्रोंपर अच्छा काबू आ गया था। विजयनगरमें ही वाद शक्ति तो विकसित हो चुकी ही थी उन्होंने शास्त्रार्थमें भाग लिया और अन्तमें शांकर विद्वानोंको पराजित किया। राजाने प्रसन्न होकर श्रीवल्लभका कनकाभिषेक किया। यह उस समयका विद्वानोंके लिए एक बड़ा मान था।

इस मानकी प्राप्ति करके श्रीवल्लभ तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणी स्नानके लिए पहुँचे। और वह कार्य सम्पन्न करके काशी पहुँचे, जहाँ वि० सं० १५५९ (ई० सं० १५०२) वैशाख वदी २ के दिन मणिकर्णिका घाटपर स्नान करके वहाँ इकट्ठे हुए विद्वानोंके साथ विविध चर्चाका लाभ उठाया।

भारतवर्षके विविध तीर्थोंमें जो दूषित परिस्थितिका अनुभव किया था उसका चित्र आपने अपने एक छोटे ग्रन्थ 'कृष्णाश्रय'में व्यक्त किया है। ऐसे जटिल समयमें सुकृती लोगोंको मार्गदर्शन देकर सत्पथपर लानेकी उनकी भावना बलवत्तर होती जाती थी। काशीमें उस समय चौड़ा गाँवके पूर्वपरिचित कृष्णदास चौपड़ा नामक क्षत्रियके पुत्र सेठ पुरुषोत्तमदास रहते थे और अपने निवास दरम्यान वहाँ उन्होंने ठीक-ठीक प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली थी। मणिकर्णिका घाटपर उनको श्रीवल्लभका दर्शन एवं उनकी भक्तिपूर्ण विद्वत्ताका परिचय होनेपर शिष्य बननेकी भावना हुई। पूर्वपरिचयके कारण श्रीवल्लभने उनको भागवती दीक्षा दी और उनके घरपर जा ठहरे, जहाँ आपने दिनों तक श्रीमद्भागवतका व्याख्यान दिया। सबसे प्रथम, जन्माष्टमीके उत्सवपर, उनके घरपर नन्दमहोत्सव किया गया। पुरुषोत्तमदास सेठकी योग्यता देखकर श्रीवल्लभने उनको शरणार्थियोंको शरणदीक्षा देनेकी आज्ञा दी थी। 'कृष्णसेवामें तत्परता, दम्भादिदोष-रहितता, श्रीमद्भागवतके तत्त्वका सबल ज्ञान जिनमें हो वह गुरु हो सके' ऐसा विधान 'तत्त्वार्थ दीपनिबन्ध'-के दूसरे 'सर्वनिर्णय प्रकरण'में इस पूर्व किया ही था; उसका यहाँ पुरुषोत्तमदास सेठमें सबूत मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काशीपुरी विद्याका बड़ा धाम थी। बाल्यकाल यहाँ ही व्यतीत किया था, इस कारण कोई अपरिचितता नहीं थी। यहाँ चातुर्मासके दिनोंमें अनेक विद्वानोंके चर्चाविचारणाका मौका मिला, और इसके फलस्वरूप 'पत्रावलम्बन' नामक सुमधुर वादग्रन्थकी श्रीवल्लभके पाससे प्राप्ति हुई। पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा—दोनोंके सिद्धान्तोंका समन्वय इस ग्रन्थमें दीख पड़ता। दुःखका विषय है कि ग्रन्थका मध्यका कितनाक भाग नष्ट हो गया है। काशी विश्वनाथपर कितना श्रीवल्लभको आदर था वह भी इस ग्रन्थके अन्तभागको देखकर समझमें आता है; जैसा कि—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः।
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु ॥३॥

काशीमें उस समय करीब सात मासों जितना समय भगवच्चर्चा एवं शास्त्रचर्चामें और शरणार्थी जीवोंको भागवती दीक्षा देनेमें एवं ग्रन्थलेखनमें व्यतीत करके आप वि० सं० १५५९ (ई० स० १५०२)—व्रज मार्गशीर्ष वदी ७ शनिवारके दिन श्रीजगदीशके दर्शनके लिए निकल पड़े। जिस दिन आप जगन्नाथपुरीमें पहुँचे वह दिन एकादशीका था। जब दर्शनके लिए मन्दिरके प्रांगणमें पहुँचे उस समय किसी पण्डेने आकर श्रीजगदीशका महाप्रसाद आपके हस्तमें दे दिया। श्रीवल्लभने आदरपूर्वक ले लिया और वहाँ ही द्वादशीके सूर्योदय तक प्रभुके भजन-कीर्तनोंमें मशगूल बन रहे और सूर्योदय होते ही स्नान-संध्याकी झंझट किये बिना ही प्रेमपूर्वक प्रसादका प्राशन किया। यों एकादशीके व्रतको और प्रसादके सम्मानको अविचलित रखा। माताजीको यहाँ ही बुला लिया और फिर काशीकी ओर गये।

श्रीवल्लभका वय तीस वर्षोंका हो गया था। माताजीको एक भारी व्यथा थी। बड़ा पुत्र रामकृष्ण विरक्त होकर चला गया था, छोटा पुत्र (भविष्यका एक अच्छा कवि) रामचन्द्र मौसालमें विजयनगर दत्तक गया था। माताजीकी व्यथा श्रीवल्लभ लग्न करे तब ही दूर हो सके ऐसा था। श्रीवल्लभका दिल विरक्तितामें जीवन व्यतीत करनेका था, किन्तु माताजीके ही आग्रहसे काशीमें ही अपने सजातीय गोपालोपासक देवन भट्टकी पुत्री श्रीमहालक्ष्मीके साथ लग्न किया। लग्नके बाद पत्नीको उसके पिताके वहाँ ही रखा और माताजीको यात्रा करानेके लिए साथ लेकर निकल पड़े और अल्प समयमें विजयनगरमें आ पहुँचे। यहाँ मामाजीके वहाँ ठहरकर, लिखे हुए ग्रन्थोंका संस्करण कर लिया।

मध्यस्थता और कनकाभिषेक

उस समय विजयनगरमें राजकीय दंगा शान्त हो चुका था और सेनापति तुळुव नरसिंहने साळुव वंशके निर्बल राजा इम्मड़ि नरसिंह (ई० स० १४८२-१५०५)को एक छोटे स्थानका राज्य सौंपकर अपना राजत्व स्थापित कर दिया। सेनापति नरसिंह स्वल्प समयमें ही मर गया और इसके बाद उसके बड़े पुत्र वीरनरसिंह (ई० स० १५०७-१५०९)के हाथमें राज्यधुरा आई। उसका मुख्य अमात्य नरास नायक था और राजाका छोटा भाई कृष्णदेव रायलु सेनापति था। दोनोंने मिलकर विजयनगरके राज्यको अच्छी स्थिरता दी। दो ही वर्षमें नरसिंहका देहान्त हुआ और कृष्णदेवको राजत्व मिला। वह राजा बड़ा धार्मिक था। सेनापतिकी हैसियतसे भी मन्दिरों एवं तीर्थोंके उद्धारका कार्य बहुत किया था। वह प्रतिवर्ष विद्वानोंको बुलाकर भिन्न-भिन्न विषयोंपर शास्त्रार्थ करवाता था और विजेताको कनकाभिषेक करवाकर मान देता था। उस समय विजयनगरमें मध्व सम्प्रदायके आचार्य व्यासतीर्थ (ई० स० १४४६-१५३९)का बड़ा मान था। कृष्णदेव पिताके समयमें जब सेनापति था उसी समय ई० स० १५०५ में द्वैत और अद्वैत सिद्धान्तोंकी एक बड़ी चर्चासभा रखी गई थी। एक ओर द्वैतमतवादी व्यासतीर्थ और दूसरी ओर केवलाद्वैतवादी शांकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डितगण था। श्री अय्यण दीक्षितके रचे हुए 'व्यासतात्पर्यनिर्णय' नामक ग्रन्थ पराजित आचार्यको सर्वथा पराजित मान लेना नहीं चाहिए। यों कहकर मास तक चले हुए शास्त्रार्थका निर्देश किया है। शायद यही प्रसंगपर मध्यस्थके रूपमें पूर्वमीमांसाके उस समयमें अपने पूर्वमीमांसा भाष्यके कारण मान्य कोटिके और तब काशीसे आकर तीन सालसे ठहरे हुए दार्शनिक विद्वान् श्रीवल्लभको चुना गया। द्वैत और अद्वैत सिद्धान्तोंकी चर्चाके अन्तमें श्रीवल्लभने दिया हुआ निर्णय दोनों पक्षोंको बाध्य था। उस समय मध्यस्थतामें कोई उत्तरमीमांसक होता तो निर्णयके विषयमें आपत्तिका भय रहता। श्रीवल्लभका पूर्वमीमांसापर पूरा काबू था— भाष्य तो लिखा ही था, उत्तरमीमांसापर भी 'अणुभाष्य' लिखा था। वादके अन्तमें 'इच्छा-द्वैत' निर्णयमें देकर दोनों पक्षोंका समुचित समाधान किया और नियमानुसार राजा एवं सभी विद्वानोंकी ओरसे 'कनकाभिषेक'के पात्र बने। कनकाभिषेक सम्पन्न होनेपर विरक्त-प्रकृतिके श्रीवल्लभने उस निमित्त मिले हुए द्रव्य स्नानजलवत् गिनकर वादी-प्रतिवादियोंके बीच बाँट दिया। तब राजाने उनका तुलापुरुष-समारम्भ किया। राजाने १६००० मुद्रा श्रीवल्लभके चरणमें रखी, जिनमेंसे ८००० के आभूषण बनवाकर विजयनगरमें प्रसिद्ध श्रीविट्ठलनाथजीको अर्पित कर दिये; ४००० अपने पिताजीके कर्जमें दे दी, और ४००० अपने गृहस्थ जीवनमें उपयुक्त हो इस कारण राजाके वहाँ जमा रखी।

इस प्रसंगके बाद श्रीव्यासतीर्थ श्रीवल्लभको मिले और मध्वसम्प्रदायको स्वीकार करनेको कहा, किन्तु श्रीवल्लभ अपने सिद्धान्तमें अचल थे।

विजयनगरके इस संमानमहोत्सवमें श्रीवल्लभको मध्यस्थी बननेके कारण सबोंसे आचार्यत्व मिल पाया था और अब आप श्रीवल्लभाचार्य बन पाये थे। विजयनगरके निवास दरम्यान 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' का तीसरा प्रकरण की स्योपज्ञ टीकाका भी आरम्भ किया हो ऐसा प्रतीत होता है; कितनेक प्रकरण ग्रन्थ, गायत्री भाषादिक भी लिखे गये थे।

तीसरी परिक्रमा और पुष्टिमार्गका विकास

आज तक श्रीआचार्यजी सामान्य विष्णुस्वामि संप्रदायानुयायी विद्वान्के रूपमें भारतवर्षमें पर्यटन कर रहे थे। एक लघुयात्रा और दो बड़ी यात्राएँ कर चुके थे। अब स्वतन्त्र आचार्यके रूपमें प्रस्थापित होनेके कारण गौरवसे वे यात्राके लिए निकले, तो भी साथमें तो माताजी एवं दामोदरदास हरसानी और कृष्णदास मेघन ही थे। विजयनगरसे निकलकर रामेश्वर गये और वहाँसे लौटकर श्रीबालाजी आदिके तीर्थ करते-करते पंढरपुर आकर श्रीविठोबाके दर्शन किये और अपने पूर्वके स्थानमें ही दूसरी दफे श्रीमद्भागवत-पारायण श्रवण करवाया। वहाँसे नाशिक आदि तीर्थ करते-करते जनकपुर आये और माणेकतालाबपर श्रीमद्भागवत-पारायण श्रवण करवाया। इस समय विष्णुस्वामी संप्रदायके केवलराम नागा अपने ५०० शिष्योंके साथ शरण आया। आचार्य श्रीने उसको भागवती दीक्षा दी और उसके ही द्वारा उसके ५०० शिष्योंको दीक्षा दिलवाई।

वहाँसे गुजरात-सौराष्ट्रके प्रसिद्ध तीर्थोंमें श्रीमद्भागवत पारायण श्रवण कराते-कराते और शरणार्थियोंको भागवती दीक्षा देते-देते मारवाड़की पूर्व सरहदके झारखण्ड नामक स्थलमें आ पहुँचे, यहाँ आचार्यश्रीके सुननेमें आया कि अपने विद्यागुरु माधवेन्द्रयति व्रजमें गिरिराज गोवर्धनपर प्रगट हुए श्रीगोवर्धनधरण देवदमनकी सेवामें मस्त रहते थे उनकी कितनेक वर्षों पूर्व ही (ई० सं० १४८४ में ही) सद्गत होनेके कारण श्री····की सेवाकी बहुत अव्यवस्था हो गई थी। आचार्य श्री झड़पसे व्रजभूमिमें आ पहुंचे और व्रजमें आकर प्रथम मुकाम गोकुलमें गोविन्दघाटपर किया। वह दिन वि० सं० १५६३ (ई० सं० १५०६) श्रावण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदि ११ गुरुवारका था। सारे दिनका उपवास था; प्रभु श्रीगोवर्धनधरणके दर्शनकी बड़ी उत्कटता थी। उसी उत्कटतामें कहा गया है कि वहाँ मध्यरात्रिके समय आपको भगवान् श्रीगोवर्धनधरणका साक्षात्कार हुआ। उस आचार्यश्रीने प्रभुको सर्वात्म भावपूर्वक आत्मनिवेदन किया और रेशमका कण्ठसूत्र प्रभुके कण्ठमें पहिराया। संप्रदायमें यह दिन तबसे 'पवितरा एकादशी'की संज्ञासे पुष्टिमार्गके प्राकट्य-दिनकी हेसियतसे माना जाता है। यों प्रतिवर्ष 'श्रावण शुक्ला एकादशी' पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंके लिए परमोत्सवका दिन हो रहा है। इस प्रसंगका खयाल आचार्यश्रीने अपने 'सिद्धान्त रहस्य' नामक छोटे प्रकरणग्रन्थके आरम्भमें दिया है। जैसा कि—

'श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि। साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥१॥
ब्रह्मसंबन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः। सर्वदोषनिवृत्तिः .... ॥२॥'

पुष्टिमार्गका आविष्कार

पुष्टिमार्ग-कृपामार्ग-अनुग्रहमार्ग यों तो कोई नई बात नहीं है। सृष्टिके आरम्भसे ही सबोंके लिए भगवान्की कृपा अनिवार्य बन रही है। तारतम्य इतना ही है कि जीवोंका लक्ष्य सृष्टिके प्रवर्तक ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्की ओर नहीं रहता है, केवल भौतिक तुच्छ सुखोंकी ओर ही सीमित रहता है—किसी जीवको ही इन तुच्छ, सुखोंके पार निःसीम-सुखात्मक भगवान्की ओर जाता है। मेरा कुछ ही नहीं है, यहाँ जो कुछ भी है वह क्षणिक है और मृत्युके बाद कुछ कामका नहीं, यहाँ एवं मृत्युके बाद जो कोई अविचलित वस्तु है वह केवल भगवान् ही है, अतः जगत्के अपने सब कुछ व्यवहार प्रामाणिक रूपमें चलाते-चलाते भी भगवदर्पण बुद्धिसे ही किया जाय, सतत भगवान्की शरणभावना ही रहे।' गीतामें जिसकी सुस्पष्टता मिलती है वह शरणमार्ग ही 'पुष्टिमार्ग'के मूलमें पड़ा है। दूसरे दिन प्रातःकालमें श्रीआचार्यजीने अपने प्रिय शिष्य और सेवक दामोदरदास हरसानीको प्रथम ही यह आत्मनिवेदन दीक्षा दी। उस दिन तक, जबसे श्रीवल्लभके सामान्यरूपमें आप दीक्षा देते थे वह विष्णुस्वामि-परंपराकी गोपाल मन्त्रवाली भागवती दीक्षा थी। पिताजीसे आपको यह दीक्षा मिली थी और कृष्णसेवापर दम्भादिरहित और श्रीभागवतके जाननेवाले किसी भी अधिकारी वैष्णवराजके द्वारा भी होती थी; पुष्टिमार्गीय आत्मनिवेदन दीक्षा अब अधिकृत गुरुसे ही होनेका प्रघात शुरू हुआ, क्योंकि इस आत्मनिवेदन-दीक्षा स्वयं भगवान्ने श्रीवल्लभाचार्यजीको दी और आपने अपने प्रिय शिष्य दामोदरदास हरसानीको देकर प्रणालीका आरम्भ किया। श्री आचार्यजीकी कोटिका पुरुष ही यह दीक्षा दे सके इतना इस दीक्षाका गौरव रहा। इसी कारणसे श्रीवल्लभ कुलमें ही गुरुत्व भावना स्थिर रही है। इतर किसी भी वैष्णवको एवं श्रीवल्लभवंशमें पुत्रियों और वधुओंका यह अधिकार नहीं रहा है।

आज पुष्टिमार्गमें क्रमिक दो दीक्षाएँ होती हैं। १. प्राथमिक दीक्षाको 'नामनिवेदन' या 'शरणदीक्षा कहते हैं और २. द्वितीय सर्वोच्चदीक्षाको 'आत्म निवेदन' या 'ब्रह्मसंबन्ध दीक्षा' कहते हैं। प्रथम दीक्षाओंमें शरणके लिए आये हुए किसी भी जीवको 'श्री कृष्णः शरणं मम' यह अष्टाक्षर मन्त्र गुरुकी ओरसे कानमें बोला जाता है। और तुलसी कण्ठी गलेमें पहिनाई जाती है। दूसरी दीक्षामें ऐसे नाम निवेदन प्राप्त जीवको पूर्व दिनके लिए शुद्धि पूर्वक उपवास व्रत कराया जाता है। दूसरे दिन प्रातः कालमें स्नानादिकसे निवृत्त होकर अत्यन्त शुद्ध रूपमें आये हुए दीक्षार्थीको गुरुके समक्ष शरण भावना पूर्वक जानेका होता है। गुरु दीक्षार्थीके दाहिने हाथमें तुलसी पत्र रखवाकर आत्म निवेदन मन्त्रका अर्पण कराते हैं। माना गया है कि यह मूल मन्त्र 'दासोऽहं, कृष्ण, तवास्मि' इतना छोटा ही था, जो श्रीआचार्यजीको भगवान्की ओरसे मिला, श्रीआचार्यजीने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके आगे 'सहस्रपरिवत्सरमितकालजात-कृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्दतिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि तद्धर्माश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराणि आत्मना सह समर्ययामि'—(असंख्य वर्षोंका समय व्यतीत हो गया है। इस कारण, भगवान्से वियुक्त होनेका जो ताप क्लेश होना चाहिए वह तिरोहित है वैसा मैं (शरण प्राप्त जीव) देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः करण और इनके धर्मों, एवं स्त्री, घर, पुत्र, रिश्तेदारों, संपत्ति, ऐहिक और पारलौकिक सभीका आत्मा सह भगवान् श्रीकृष्णको समर्पण करता हूँ) इतना भाग स्पष्टताके लिए संमिलित किया। श्रीआचार्यजीके पौत्र श्रीगोकुलनाथजीके घरमें 'भगवते कृष्णाय श्रीगोपीजनवल्लभाय' ऐसा कहा जाता है।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (भ० गी० १८।५४) और 'ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।' (भाग०, ९-४-६५), 'दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवदेनम्।' (भाग० ११-३-२८), एवं 'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धचात्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत् तत्।' (भाग० ११-२-३६)—इन वाक्योंका ही यह संक्षेप है। यों कुछ भी नयी बात न कहते प्राचीन प्रणालीका ही पुनरुज्जीवन किया गया है।

दामोदरदास हरसानीको प्रथम दीक्षा देकर फिर तुरन्त कृष्णदास मेघन, और नये शिष्यों—प्रभुदास जलोरा क्षत्रिय, रामदास चौहाण आदि वैष्णवोंको दीक्षा दी। इस कार्यकी विशिष्टताका कुछ खयाल 'तत्त्वार्थ दीपनिबन्ध'के दूसरे प्रकरणके 'सर्वत्यागेऽनन्यभावे····' (२१८-२१९) आदि दो श्लोकोंमें मिलता है।

सामान्य भक्तिमार्ग-भागवतमार्गसे आगे बढ़कर श्री आचार्यजीने विशिष्ट भक्तिमार्ग-पुष्टिमार्गका आविष्कार किया, और अब आप ही इस मार्गके प्रधान सुकानी बने। इनके पूर्व सिद्धान्तमें साधन भक्ति और शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद था, माहात्म्यज्ञानसे पूर्ण भक्तिकी चरम कोटिमें अक्षर ब्रह्मके साथ किसी भी एक प्रकारका मोक्षमें ही इतिकर्तव्यता थी। अब जो नया आविष्कार हुआ वह किसी भी प्रकारके ज्ञानसे निरपेक्ष निःसाधन प्रेमलक्षणाके फलस्वरूप किसी भी दशामें भगवल्लीलाका साक्षात् अनुभव और देहान्तके बाद भगवल्लीला-सहभागिताकी कोटिका था।

श्रीगोवर्धनधरण श्रीनाथजी

श्रावण शुक्ला द्वादशीके पुष्टिमार्गके नये आविष्कारको सम्पन्न करके आप शिष्योंके साथ श्रीगोवर्धन पर्वतपर पहुंचे और सबसे प्रथम मयूरपिच्छका मुकुट एवं पीताम्बर काछनीका श्रीगोवर्धनधरणके स्वरूपको शृंगार करके भोग धराया। संप्रदायमें उस दिनसे श्री···का श्रीनाथजी नाम आपने प्रसिद्ध किया। आचार्य-श्रीने पुष्टिमार्गीय सेवाप्रकार—नन्दालयकी भावनासे शुरू किया और श्री····की सेवाका अधिकार रामदास चौहाणको एवं कीर्तनकी सेवाका कुम्भनदासजीको सौंपा। प्रभुको गायों पर बहुत प्रेम है इस कारण अपनी ओरसे एक गाय खरीद करवाकर श्री····की सेवाके लिए दी। और थोड़े ही समयमें वहाँ बड़ी गोशाला बन गई।

द्वादशवनी व्रजपरिक्रमा

इस असामान्य कार्य को सम्पन्न करके आपने भगवान् बाल कृष्णके विहार स्थान व्रजभूमिके बारह वनोंकी भक्ति भावपूर्ण परिक्रमाका वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) व्रज आश्विन वदि १२ के दिन मथुरामें विश्रामघाटपर संकल्प करके गोरको साथ लेकर आरम्भ किया। आगे जाकर श्रीगोकुलनाथजीके व्रज चौरासी कोस-परिक्रमा प्रघात पाड़ा इसका यह द्वादशवनी परिक्रमा मूल था। परिक्रमामें जब आप भांडरी बनमें आये तब वहाँ मध्व संप्रदायके विजयनगर वाले आचार्य व्यासतीर्थजी मिले। उन्होंने श्रीवल्लभाचार्यजीके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समक्ष अपनी पूर्वकी विज्ञप्तिका पुनरुच्चारण किया, किन्तु आपने सविवेक अनिच्छा बताई, आगे बढ़कर अब तो स्वतन्त्र निर्गुण भक्ति मार्ग-पुष्टिमार्गके प्रचारकी ही अपनी भावना व्यक्त की। भिन्न-भिन्न वनोंकी परिक्रमा करके आप फिर श्रीगोवर्धन गिरिपर आये वहाँ श्रीनाथजीका प्रथम अन्नकूटोत्सव संपन्न किया। दूसरे दिन भाई दूजको मथुरा प्रातः कालमें पहुँचकर विश्राम घाटपर परिक्रमा पूर्ण करके अपने गोर उजागर चौबेको एक सौ रुपये दक्षिणामें दिये, यों श्रीयमुनाजीका और यमद्वितीयाके दिनका आपने माहात्म्य बढ़ाया।

काशी निवास : सुबोधिनी लेखन

श्रीगोबर्धन पर्वतपर श्रीनाथजीके सेवा क्रमकी व्यवस्था करके, एवं द्वादशवनी परिक्रमा और श्रीयमुनाजीके माहात्म्यको बल देकर—यों नयी प्रणालियोंके साथ पुष्टिमार्गका नये स्वरूपमें आविष्कार करके अपनी चालू भारतवर्षकी परिक्रमा आगे बढ़ानेके लिए आप झारखण्डमें वापस जा पहुँचे वहाँसे आगे अनेक तीर्थ करते करते तीसरी दफे श्रीजगन्नाथ पुरी आये और वहाँ पूर्वके नगर द्वारके नजदीक एक सुन्दर स्थानपर श्रीमद्भागवत पाराणयका श्रवण कराया। आगे दूसरे महत्त्वके तीर्थ करते करते आप माताजी और सेवकोंके साथ काशीमें वापस आ पहुँचे। काशीमें पुरुषोत्तमदास सेठके यहाँ रहनेकी व्यवस्था थी ही, यहाँ आनेके बाद पत्नीका द्विरागमन संपन्न हुआ और स्वस्थता प्राप्त करके श्रीमद्भागवतकी दूसरी टीका 'सुबोधिनी' लिखनेका आरम्भ किया। आपका नियम था कि आप बोलते जाँय और उनके शिष्य माधवभट्ट काश्मीरी लिखते जाँय। प्रवासमें भी यही क्रम चालू था। दूसरे भी पुष्टिमार्गपर छोटे छोटे प्रकरण ग्रन्थमें यहाँ बनते जाते थे।

काशीके निवास दरम्यान विद्वानोंके साथ वाद विवाद और चर्चाओंकी झंझट रहती थी, सुबोधिनी लेखनमें यह बाधारूप था। इस कारण आपने प्रयाग त्रिवेणी नजदीक पश्चिम तीरपर अडेलके पासका एक स्थान पसन्द किया और पारंपरिक चले आते अग्निहोत्रको भी वहाँ स्थिर किया। बीच बीच यात्राके लिए आप ब्रजमें आते थे। ऐसे ही एक समय गौरांग श्रीचैतन्य महाप्रभुका मिलाप हो गया था। वि० सं० १५६८ (ई० स० १५११)में फागुण सुदि ६ के दिन आप वृन्दावन आये तब वहाँ चार मास ठहरे थे। और दो स्कन्धोंकी सुबोधिनी टीकाका लोगोंको श्रवण करवाया था; भाण्डीरवनकी कुञ्जोंमें रूप, सनातन और जीव गोस्वामीके साथ भगवच्चर्चा भी हुई थी। आप अपने कुटुम्बको वृन्दावनमें ही रखकर उत्तराखण्डकी यात्रामें गये थे। सं० १५६८ (शक १४३३-ई० स० १५११)के अन्तमें आप बदरी नारायण पहुँचे थे। और वहाँके गोर वासुदेवको वृत्तिपत्र लिख दिया था। वृन्दावन वापस जाकर आ गये तब बारंबार प्रकाण्ड भगवद्भक्त श्रीमधुसूदन सरस्वतीका आवागमन और भगवच्चर्चा चालू थी। एक प्रसंगपर गौरांग श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अडैलके पाससे निकले और श्रीआचार्यजीके वहाँ मिलनेके लिए आये। उस समय मध्याह्नका था और श्री····का राजभोग हो गया था। सब लोग प्रसाद लेकर निवृत्त हो बैठे थे। श्री आचार्यजीने पत्नीको सामग्री तुरन्त तैयार करनेको कहा। एक ओर भगवच्चर्चा होती रही और दूसरी ओर पाक संपन्न होता चला। तयारीपर पत्नीने श्री····को जगानेके लिये विज्ञप्ति की, जिससे सामग्री श्री····को समर्पित की जाय और बादमें श्रीचैतन्यजीको प्रसाद लिवाया जाय-क्या भगवद्भाव ! आचार्यजीने कहा कि 'श्री····को जगानेकी कोई जरूरत नहीं है। श्रीचैतन्यजीके हृदयमें निरन्तर बिराजते हुए भक्ताधीन भगवान् साक्षात् अरोगेंगे; अतः सब सामग्री उनके समक्ष ही धर दो', इस प्रसंगके बाद भी एक दो दफे श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीआचार्यजी महाप्रभुका मिलाप हुआ था।

अडेलमें स्थिर होनेके बाद विजयनगरमें राज्यमें जमा रखी हुई ४००० मोहरोंकी रकम मँगवा ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तीन सोमयाग बड़े समारम्भोंसे संपन्न किया। अडेलके निवास कालमें आप ब्रजमें जाते थे और भारतवर्षके अन्य तीर्थोंमें भी जाते थे। आचार्यश्रीकी धर्माचार्य रूपकी ख्याति अब सर्वत्र प्रसृत हो गई थी। सिकन्दर लोदी (ई० स० १४८८-१५१९) का आचार्यश्रीकी ओर बड़ा आदर था और अपने चित्रकारको भेजकर 'दामोदरदास हरसानी दण्डवत् प्रणाम करते हैं', कृष्णदास मेघन बैठे हैं और माधवभट्टकाश्मीरीको श्रीआचार्यजी सुबोधिनीजी लिखाते हैं इस प्रकारका चित्र भी बनवाया था, जो आज किशनगढ़ नरेशके पास सेवामें है। सिकदर लोदीसे हुकम हो गया था इस कारण ब्रजभूमिमें भारतवर्षकी हिन्दू प्रजाको यात्राकी सुविधा हो गई थी; कितनेक लोग अडेल तक भी आचार्यश्रीके दर्शनके लिए जाते थे यों अब शिष्योंकी तादात भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

पुत्रप्राप्ति और प्रयाण

अडेलके स्थायी निवासमें सं० १५७० (ई० स० १५१३) ब्रज आश्विनवदि १२ के दिन श्रीगोपीनाथजीका प्राकट्य हुआ। बाद जब काशी पधारे तब वहाँ न ठेरते नजदीकके पूर्वपरिचित चरणाट नामक स्थानमें रहे, जहाँ सं० १५७२ (ई० स० १५१५)—ब्रज पौस वदि ९ शुक्रवारके दिन दूसरे पुत्र श्रीविठ्ठलनाथजीका प्राकट्य हुआ। यहाँ तकमें भागवत सुबोधिनीके १-२-३ स्कन्धके लेखन कार्य हो चुका था। अब शायद देह छोड़नेका प्रसंग आ जाय, इस शंकासे आपने १० वें स्कन्धकी टीका लिखना शुरू किया। अडेल एवं चरनाटके निवास दरम्यान ब्रजयात्राका उनका क्रम चालू था। और एक बार तो सं० १५७५ (ई० स० १५२७) में सौराष्ट्रमें द्वारका भी गये थे ऐसा प्रमाण मिला है। जब यह देह छोड़नेका प्रसंग आया तब ११ वें स्कन्धके तीन अध्यायकी टीका पूर्ण हुई थी और ४ थे अध्यायके आरम्भ मात्र किया था। आप खुद कहते हैं कि भगवान्की तीसरी आज्ञा हुई और आपने आतुर संन्यास लिया। आप काशी पधारे और वहाँ हनुमान घाटपर तेज पुंजके रूपमें देहत्याग किया—सं० १५८७ (ई० स० १५३०) के आषाढ़ वदि २ ऊपर ३ को रथयात्राके उत्सवकी समाप्तिके समय ही।

दोनों पुत्रोंकी आयु इतनी बड़ी नहीं थी। आपके शिष्योंने रक्षण भार उठा लिया। श्रीगोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजीकी सेवाका वहीवट सुव्यवस्थित रूपमें चला जा रहा था। उत्तरावस्थामें गुरु माधवानन्दजी और इनके बाद बंगाली वैष्णव सेवामें रहते थे। क्रममें कुछ बाधा उपस्थित हुई तब आचार्यजीके एक शिष्य गुजराती कृष्णदासजीने वही वट कबज करके पुष्टिमार्गीय पद्धतिसे सेवा प्रकार चलनेकी व्यवस्था की। श्रीगोपीनाथजीको एक पुत्र हुआ था। बचपनमें उसका देहान्त हुआ। श्रीगोपीनाथजी भी युवावस्थामें गये और पुष्टिमार्गके प्रसार प्रचारका भार श्रीविठ्ठलनाथजी पर आया। आप चरणाटमें ज्यादा करके रहते थे। वे अब मथुराजीमें आ बसे, वे बड़े दार्शनिक पण्डित एवं कवि भी थे। पिताजीकी ग्रन्थ लेखन और संप्रदाय प्रसारकी प्रणालीको उन्होंने प्रबलतासे आगे बढ़ाया। इस संप्रदायने ब्रजभाषाकी अपार सेवा की है। आचार्यश्रीके चार सेवक कुम्भनदासजी, सूरदासजी, परमानन्ददासजी और गुजराती कृष्णदासजी ने श्रीनाथजीकी कीर्तन सेवामें, कृष्ण लीलाके सहस्रों पदोंकी रचना दी, तो श्रीविठ्ठलनाथ गुसांईजीके चार सेवक चत्रभुजदासजी, नन्ददासजी गोविन्द स्वामी और छीत स्वामीने उनमें बड़ी भारी संख्याका प्रदान किया। आगे भी अनेक कवियोंने अपनी कीर्तन सेवासे ब्रजसाहित्यको बड़ा महत्त्व दिया।

श्रीविठ्ठलनाथजीके सात पुत्र हुए और उनके सात घरोंकी सात गादी हुई। इस सिवा समग्र भारतवर्षमें अनेक नगरोंमें, गाँवोंमें पुष्टिमार्गीय मन्दिरोंमें भगवान् श्रीकृष्णके ही भिन्न भिन्न लीला स्वरूपोंकी सेवाका क्रम चलता है। पुष्टिमार्गका आज प्रधान स्थान मेवाड़में पधारे हुए श्री नाथजीका नाथद्वारमें है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org